प्रवचन-१८ गाथा-२६ से २८ शुक्रवार, ज्येष्ठ कृष्ण ८, दिनांक २६-०६-१९७०

२६ वीं गाथा। यह दर्शनपाहुड़ है। धर्म में सम्यग्दर्शन, यह मुख्य है। धर्म तो उसे यहाँ कहा, धर्म और धर्म का मत (कि) अन्तर में आत्मा जो है, सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा कहा, वह आनन्द का धाम आत्मा है। ऐसा आत्मा, उसके सन्मुख होकर राग, संयोग और एक समय की पर्याय से विमुख होकर, स्वभाव का-अन्तर का भान होकर प्रतीति होना और उस प्रतीति सहित ज्ञान और चारित्र हो (अर्थात्) वीतरागता (हो) और बाह्य नग्नदशा हो, उसे जैनधर्म का मत अथवा जैनधर्म कहा जाता है। समझ में आया? उसमें भी सम्यग्दर्शन मुख्य है। सम्यग्दर्शन न हो तो उसे ज्ञान भी नहीं होता, उसे चारित्र भी नहीं होता और बाह्य का द्रव्यलिंग नग्न होता है तो भी वह साधु नहीं है, वह धर्मी नहीं है। यह बात चलती है।

अभ्यंतर भावसंयम बिना बाह्य नग्न होने से तो कुछ संयमी होता नहीं है – ऐसा जानना। अभ्यन्तर आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसा अन्तर में भान (हो) और स्वरूप में लीनता, आनन्द की रमणता, ऐसा जो संयम, उसका नाम भगवान ने संयम कहा है और इस संयम के बिना बाह्य नग्न हो, वस्त्र छोड़कर अकेला नग्न हो, वह कहीं साधु नहीं है, वह कोई संयमी नहीं है।

यहाँ कोई पूछे – बाह्य भेष शुद्ध हो,.. बाह्य भेष-बाह्य नग्नपना शुद्ध हो, ऐसा कहते हैं। **आचार निर्दोष..** पालता हो। निर्दोष (आचार हो)। उसके लिये बनाया हुआ आहार-पानी न लेता हो, जंगल में रहता हो आगम प्रमाण उसका आचरण व्यवहार से अच्छा हो। **अभ्यंतर भाव में कपट हो...** अर्थात् अभ्यन्तर में सम्यग्दर्शन नहीं हो। वस्तु का भान न हो। उसके लिये क्या करना? **उसका निश्चय कैसे हो..** ऐसा प्रश्न है **तथा सूक्ष्मभाव केवलीगम्य हैं,..** एक यह प्रश्न है। सूक्ष्मभाव तो केवली जानते हैं। बहुत एक-एक समय का भाव, **मिथ्याभाव हो, उसका निश्चय कैसे हो,..** सूक्ष्मभाव केवलीगम्य है। ऐसा मिथ्यात्व अन्दर जरा सूक्ष्म हो और ऐसी नग्नदशा, संयम में अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत पालता हो। पंच महाव्रत अर्थात् शुभराग, ऐसी जिसकी क्रिया हो और अन्दर में सम्यग्दर्शन न हो, आत्मा का भान न हो। उसे हमें किस प्रकार समझना?

निश्चय बिना वंदने की क्या रीति? उसका निश्चय न हो तो उसे हमें वन्दन करना? साधु मानना या नहीं मानना? ऐसा शिष्य का प्रश्न है।

उसका समाधान – ऐसे कपट का जबतक निश्चय नहीं हो, तबतक आचार शुद्ध देखकर वंदना करे, उसमे दोष नहीं है... आगम प्रमाण निर्दोष आहार—पानी, वस्त्ररहित नग्नपना और अट्ठाईस मूलगुण में कोई भी दोष न हो, ऐसा शुद्ध आचार देखकर वन्दना करे तो उसमें दोष नहीं होता। जिसका व्यवहार शुद्ध हो। **कपट का किसी कारण से निश्चय हो जाय, तब वंदना नहीं करे,..** क्योंकि वह तो श्रद्धा भ्रष्ट है, उसे कुछ वस्तु की खबर नहीं है।

केवलीगम्य मिथ्यात्व की व्यवहार में चर्चा नहीं है,.. केवलीगम्य एक समय का कोई मिथ्यात्वभाव (होवे तो), उसकी कहीं व्यवहार में चर्चा नहीं है समझे? **जो अपने ज्ञान का विषय ही नहीं, उसका बाधनिर्बाध करने का व्यवहार नहीं है,...** जो अपने ज्ञान का विषय नहीं है, उसे विरोध करना या अविरोध करना, उसका कुछ सवाल नहीं है। **सर्वज्ञ भगवान की भी यही आज्ञा है। व्यवहारी जीव को व्यवहार का ही शरण है।** निर्दोष आहार-पानी लेता हो, नग्नपना हो, अन्तर में बाह्यपने में विरुद्ध न दिखता हो। अन्तर नहीं परन्तु बाह्य से विरुद्ध न दिखता हो तो व्यवहार से जैनदर्शन, ऐसा मानकर वन्दन करनेयोग्य है।

गाथा-२७

आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं ह्न

ण वि देहो वंदिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुतो।
को वंदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेय सावओ होइ।।२७।।

नापि देहो वंद्यते नापि च कुलं नापि च जातिसंयुक्तः।
कः[1] वंद्यते गुणहीनः न खलु श्रमणः नैव श्रावकः भवति।।२७।।

१. 'कं वन्देगुणहीनं' षट्पाहुड में पाठ है।

नहिं देह वंदन–योग्य कुल नहिं जाति भी नहिं वंद्य है।
गुण–हीन पूजे कौन? वह श्रावक नहीं नहिं श्रमण है।।२७।।

अर्थ **– देह को भी नहीं वंदते हैं और कुल को भी नहीं वंदते हैं तथा जातियुक्त को भी नहीं वंदते हैं, क्योंकि गुणरहित हो उसको कौन वंदे ? गुण बिना प्रकट मुनि नहीं, श्रावक भी नहीं है।**

भावार्थ **– लोक में भी ऐसा न्याय है जो गुणहीन हो उसको कोई श्रेष्ठ नहीं मानता है, देह रूपवान हो तो क्या, कुल बड़ा हो तो क्या, जाति बड़ी हो तो क्या, क्योंकि मोक्षमार्ग में तो दर्शन–ज्ञान–चारित्र गुण हैं, इनके बिना जाति–कुल–रूप आदि वंदनीय नहीं हैं, इनसे मुनि–श्रावकपणा नहीं आता है, मुनि–श्रावकपणा तो सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र से होता है, इसलिए इनके धारक हैं वही वंदने योग्य हैं, जाति, कुल आदि वंदने योग्य नहीं हैं।।२७।।**

गाथा–२७ पर प्रवचन

आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं –

ण वि देहो वंदिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुतो।
को वंदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेय सावओ होइ।।२७।।

भगवान के मार्ग में देह जड़... यह देह तो मिट्टी है। यह कहीं वन्दनयोग्य नहीं है। यह तो जड़ है, मिट्टी, पुद्गल अजीव है। यह कहीं गुण नहीं कि इसे वन्दन करना। **कुल को भी नहीं वंदते हैं..** उत्तम कुल में हो। सेठिया नहीं आये? उत्तम कुल के हों। राजकुल के, कोई नगर सेठ के कुल इत्यादि। उस उत्तम कुल का हो तो कोई वन्दन करनेयोग्य नहीं है। इससे कहीं गुण नहीं है, यह कहीं गुण नहीं है। और **जातियुक्त..** भी हो। माता के पक्ष में (ननिहाल में) बहुत ऊँची जाती हो। समझ में आया? इससे कहीं जाति की अपेक्षा से कुछ वन्दन करनेयोग्य नहीं है। **क्योंकि गुणरहित हो, उसको कौन वंदे?** जिसमें आत्मा सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र नहीं है, ऐसे गुणरहित कुल और जाति के वेश या देह, वह वन्दन करनेयोग्य नहीं है। समझ में आया? देखो! यह धर्मी का धर्म

विवेक। उसे जानना पड़ेगा या नहीं ? नवतत्त्व की श्रद्धा में चारित्र, सम्यग्दर्शनसहित किसे होता है ? कैसे होता है ? उसे इसे बराबर श्रद्धा को पहिचानना पड़ेगा। नहीं तो नव तत्त्व में विरुद्ध श्रद्धा होगी तो वह श्रद्धा मिथ्यात्व है। समझ में आया ? आहाहा!

कहते हैं, **गुण बिना प्रकट मुनि नहीं, श्रावक भी नहीं है।** यह तो प्रकट शब्द कहाँ से आया इतना। शब्द समझाते हैं। **'को वंदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेय सावओ होइ'** जहाँ अन्दर आत्मा सर्वज्ञ ने कहा वैसा, पुण्य-पाप के रागरहित, शरीर-देह आदि की मिट्टी की क्रियारहित ऐसा भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन, अनुभव और दर्शन हो और उसका ज्ञान हो और उसमें स्थिरतारूपी संयम हो तो वह वन्दन करनेयोग्य है। गुण वन्दन करनेयोग्य है। पण्डितजी! आहाहा! यह बड़े कुल के हैं या बहुत रूपवान हैं या राजा का कुँवर है, इसने दीक्षा ली है, इसकी रानी, माँ बड़े कुल की थी, इसलिए उसके कारण वन्दन करनेयोग्य है, ऐसा नहीं है।

यहाँ तो परमेश्वर तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी ने जो आत्मा और आत्मा का सम्यग्दर्शन (कहा)। यहाँ तो संयमसहित की बात है न? सम्यग्दर्शन आत्मा का पहला धर्म का सोपान ऐसा जिसे प्रगट हो, जिसे सच्चा अन्तर आत्मज्ञान हो और स्वरूप में संयम और चारित्र की रमणता आनन्द की उग्र हो, वह गुण वन्दन योग्य है, वेश और जाति, कुल और रूप ये कोई वन्दन के योग्य नहीं हैं।

भावार्थ – **लोक में भी ऐसा न्याय है जो गुणहीन हो, उसको कोई श्रेष्ठ नहीं मानता है,...** गुण के बिना लोक में भी मानते हैं ? **देह रूपवान हो तो क्या, कुल बड़ा हो तो क्या,..** कुल.. कुल..। कुल बड़ा हो, इससे क्या? जाति बड़ी हो तो क्या? **मोक्षमार्ग में तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र गुण हैं,...** लो! भगवान के मार्ग में तो आत्मा परमानन्द की मूर्ति है, ऐसा अन्तर सम्यग्दर्शन, (वह गुण है)। देखो! यह धर्म की पहली सीढ़ी। आहाहा! समझ में आया? और उसका ही—आत्मा का ज्ञान और आत्मा में रमणता की वीतरागता की संयम दशा, वह वन्दन करनेयोग्य है। कहो, समझ में आया?

इनके बिना जाति-कुल-रूप आदि वंदनीय नहीं हैं,... इसके बिना जाति हो या बड़ा पैसेवाले का लड़का था और करोड़पति था... आहाहा! समझ में आया? वह कोई आदर करनेयोग्य नहीं है। **इनसे मुनि-श्रावकपणा नहीं आता है,...** लो! श्रावकपना

नहीं आता, ऐसा कहते हैं। बड़ा राजा का लड़का हो और रानियाँ छोड़ी हों अथवा संसार... बारह व्रत धारण किये हों विकल्प, परन्तु भान आत्मा का नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं। वीतराग परमेश्वर कहते हैं, केवलज्ञानी कहते हैं ऐसा उसे अन्तर्मुख चैतन्य की श्रद्धा और सम्यग्दर्शन नहीं है। उसका ज्ञान नहीं और अन्तरचारित्र तो सम्यग्दर्शन के बिना होता नहीं तो उसे श्रावक भी कहा नहीं जाता। कहो, समझ में आया?

मुनि-श्रावकपणा तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से होता है,... लो! वेश से और बाहर के आचरण से नहीं होता। अन्तरस्वरूप भगवान आत्मा, शुद्ध शुद्धस्वरूप (विराजमान है)। उपयोग की व्याख्या नहीं की थी? एक बार कहा था। पंचाध्यायी में उपयोग है न? पंचाध्यायी में शुद्धोपयोग है, आचार्य-उपाध्याय-साधु को शुद्धोपयोग होता है। सब गुणों का वर्णन किया है न? पण्डितजी! आचार्य, उपाध्याय और साधु को शुद्धोपयोग होता है, ऐसा वर्णन पंचाध्यायी में है। मोक्षमार्गप्रकाशक में, प्रवचनसार में इत्यादि बहुत अधिकार में है। यहाँ तो शुद्धोपयोग कहते हैं कि शुद्धोपयोग हो, उसे शुक्लध्यान होता है। शुक्लध्यानी को शुद्धोपयोग (होता है) लो, ऐसा लेख आया है। आठवें गुणस्थान में शुक्लध्यान होता है, वहाँ शुद्धोपयोग होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : इस काल में शुक्लध्यान नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! नहीं होता। शुद्धोपयोग नहीं होता, उसमें शुक्लध्यान नहीं होता परमशुद्धोपयोग को प्राप्त मुनि हैं। समझ में आया? परमशुद्धोपयोग को प्राप्त (हो), उन्हें मुनि कहते हैं। आहाहा! गजब काम, भाई! समझ में आया? अकेले पंच महाव्रत के विकल्प और क्रिया करे, वे कहीं मुनि नहीं हैं और उस पंच महाव्रत के विकल्प का कर्ता होवे, वह तो मिथ्यादृष्टि है। मैं कर्ता हूँ, मेरा कर्तव्य राग का है। वह तो राग है, आस्रव है। समझ में आया? शुद्धोपयोगपना, वही साधुपना है। यह बात तो पूरी भुला दी गयी है। वह परम शुद्धोपयोग तीनों को गिना है। आचार्य, उपाध्याय, साधु। शुभराग दया, दान, व्रत, तप का जो राग है, वह तो शुभराग है। वह तो शुभोपयोग है, वह तो बन्ध का कारण जहर है, राग है। आहाहा! समझ में आया?

अन्तर में ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान तीन के भेद भूलकर शुद्ध अन्तर रमणता एकाकार हो, उसे भगवान शुद्धोपयोगरूपी चारित्र, उसे मुनि, उसे आचार्य, उसे उपाध्याय कहते हैं

और उसके पहले श्रावक हो, उसे भी शुद्धोपयोग किसी-किसी समय होता है। अरे! सम्यग्दृष्टि हो, उसे भी शुद्धोपयोग किसी-किसी समय होता है परन्तु परम शुद्धोपयोग मुनि को होता है। समझ में आया? कुछ खबर नहीं होती (यों ही) हाँक रखते हैं। गजट में लिखा है। कल आया है न? जैन गजट। गजट अर्थात् क्या?

मुमुक्षु : समाचार।

पूज्य गुरुदेवश्री : समाचार? गजट अर्थात् समाचार, ठीक। यह जैन के समाचार ये? ऐसे? आहाहा! जैन परमेश्वर के समाचार तो यह हैं कि यह महाव्रत का भक्ति का राग / विकल्प उठता है न? उस राग से भिन्न तेरी चीज़ है। उसका अन्तर में सम्यग्दर्शन बिना तेरी कोई भी क्रिया धर्म में नहीं आती। आहाहा! क्या हो? लोगों को लूटा है न? समझ में आया?

शुद्धपरिणति, शुद्धभाव... उसमें भी नहीं कहा? बनारसीदास में। 'शुद्धता विचारे ध्यावे, शुद्धता में केलि करे' अभी के लिये कहा होगा या? आठवाँ? अभी तो आठवाँ नहीं है। यहाँ तो अभी की बात ली है।

मुमुक्षु : यहाँ नहीं, सीमन्धर भगवान के पास है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सीमन्धर भगवान तो आत्मा स्वयं है। सीम-मर्यादा का धारक। राग में न जाए, विकल्प में न जाए, ऐसा आत्मा स्वयं सीमन्धर भगवान है। आहाहा! उसके समीप में जाए तो उसे शुद्धोपयोग हुए बिना नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया? वह सीमन्धर भगवान तो पर हैं। यहाँ कहाँ दे ऐसा है कुछ? आहाहा! गजब काम! सीम अर्थात् मर्यादा के धारक। आत्मा का स्वभाव ही ऐसा मर्यादित है कि कभी ज्ञायकस्वरूप उस रागरूप होता ही नहीं। पंच महाव्रत के रागरूप आत्मा हुआ ही नहीं। वह तो राग आस्रव है। उसे अज्ञानी धर्म मानता है और कहता है कि यह हमारा चारित्र है। जाधवजीभाई!

मुमुक्षु : व्यवहारचारित्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारचारित्र कैसा? यह तो निश्चय हो, स्वरूप की दृष्टि हुई, ज्ञान और रमणता होवे तो पंच महाव्रत के विकल्प को व्यवहारचारित्र अर्थात् चारित्र नहीं है, उसे चारित्र कहना, इसका नाम व्यवहारचारित्र है। कुछ भान न हो और उसे व्यवहार आया कहाँ से? समझ में आया?

कहते हैं **मुनि-श्रावकपणा तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से होता है,...** लो, समझ में आया? कोई बारह व्रत के विकल्प करे, इसलिए श्रावकपना है, ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान की भक्ति बहुत करे, पाँच-पाँच लाख मन्दिर के लिये खर्च करे, (इसलिए श्रावक है—ऐसा नहीं है)। अभी यह करते हैं न? नहीं खर्च किये? यह तो बड़ा करते हैं। ऐई! वजुभाई! वापस बड़ा करे, उसके प्रमाण में सबका करना पड़ेगा या नहीं? दस लाख का। कम से कम दस लाख का। उसके प्रमाण में वापस सब होगा या नहीं? मानस्तम्भ के समय पाँच-पाँच हजार लोग आये थे। आहाहा! पाँच-साढ़े पाँच हजार लोगों का बड़ा शहर बँधाया था, इससे भी यह तो बड़ा जबरदस्त काम है। यह तो परमागम। वीतराग के वचन की मूर्ति। वाणी की मूर्ति। कहो, समझ में आया? यह तो हो गया, इसलिए ऐसा होता है, परन्तु है तो यह शुभभाव। लाख दे या दो लाख दे, या पाँच लाख दे तो वह राग मन्द किया हो तो शुभभाव होता है; धर्म-बर्म नहीं। ऐ... मलूकचन्दभाई! इतने तो इनके लड़के दे नहीं देंगे परन्तु दे तो भी शुभभाव होगा, ऐसा यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : धर्म होगा, ऐसा कहो तो दें।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म होगा कहाँ से? धूल में धर्म होगा वहाँ? पैसा ही इसका कहाँ था? इसके पिता का भी नहीं थे और इसका भी कहाँ थे? वे तो जड़ के हैं। जड़ के पैसे जड़ हैं, वह मैं देता हूँ, ऐसा जो जड़ का अभिमानपना, वही मिथ्यात्व है। आहाहा!

मुमुक्षु : पैसा रख छोड़े तो क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : रखे तो भी वे मेरे हैं, ऐसा माने तो भी मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : चारों और से दण्डते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्योंकि पैसा जड़ है या चैतन्य? पैसे जड़रूप रहे हैं या आत्मा के होकर रहे हैं?

मुमुक्षु : वे आत्मा के होकर नहीं रहे परन्तु आत्मा को गर्मी देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : गर्मायी नहीं, धूल भी नहीं आती वहाँ।

मुमुक्षु : प्रभु! देवे तो भी शुभभाव है और न दे तो अशुभभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, न दे तो अशुभभाव। वह तो स्वयं मेरे हैं, ऐसा मानता है इसलिए। मैं तो दूसरी बात कहता हूँ। वे रजकण पैसे हैं, उनका मैं मालिक हूँ, ऐसा माने तो मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : बाहर का पाप नहीं यह तो मिथ्यात्व का पाप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा यहाँ तो कहा जाता है।

मुमुक्षु : पहले चारित्र के पाप को हल्का कर डाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अजीवतत्त्व है। अजीवतत्त्व का तू मालिक है ? जगत के परमाणु, मिट्टी को भगवान ने पुद्गलतत्त्व कहा। वह पुद्गलतत्त्व इस जीवतत्त्व का है ? यह मानता है कि वे मेरे हैं और मैं उन्हें देता हूँ। यह तो कहते हैं, उनका स्वामी होकर दे तो मिथ्यात्व है। राग की मन्दता की हो तो शुभ (भाव है, उसमें) मिथ्यात्वसहित का जरा पुण्य बँधेगा। पुण्य में तो अघाति में अन्तर पड़ेगा परन्तु मिथ्यात्व का लकड़ा (विपरीतता) तो साथ में बड़ी है। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र बिना, ये गुण हैं और इनके बिना श्रावक या मुनि नहीं हो सकता। दान दे तो श्रावक हो, ऐसा व्रत पालन करे तो श्रावक हो ऐसा नहीं कहा। देखो! सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। श्रावक को थोड़ा चारित्र होता है, मुनि को विशेष होता है। उसका भाग तो दोनों को होता है। समझ में आया ? **मुनि-श्रावकपणा नहीं आता है,...** सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र के बिना मुनिपना, श्रावकपना नहीं आता है। **मुनि-श्रावकपणा तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से होता है, इसलिए इनके धारक हैं, वही वंदने योग्य हैं,...** लो, उनके धारक हैं, वे वन्दनयोग्य हैं। **जाति, कुल आदि वंदने योग्य नहीं हैं।** श्रावक का नाम तो दिया है न! मूल पाठ में है। '**सवणो णेय सावओ**' इतना। इसके बिना नहीं। वन्दन करनेयोग्य नहीं।

सवेरे आया था, नहीं ? ईश्वरकर्ता माने जगत। वैष्णव। और साधु होकर छह काय की दया मैं पालन कर सकता हूँ। छह काय के शरीर पुद्गल हैं, उनकी मैं दया पाल सकता हूँ, दोनों एक प्रकार के मिथ्यादृष्टि हैं। कहो, समझ में आया ? क्योंकि यह छह काय का कर्ता हुआ, वह ईश्वर पूरी दुनिया का कर्ता हुआ। यहाँ तो आया था कि कर्ता

होता है, उसकी मुक्ति नहीं होती और इन दोनों को कर्तृत्वबुद्धिवालों को मिथ्यादृष्टि जानना। ये सम्यग्दर्शन से रहित हैं।

मुमुक्षु : दया का पालना...

पूज्य गुरुदेवश्री : दया का पालना अपना; पर का नहीं। पर का कौन पाल सकता है। छह काय है, उसका ज्ञान करके अपने स्वरूप में रहना, वह दया है। पर की दया कौन पाले? वह तो जड़ परपदार्थ शरीर है। शरीर को रहना और आत्मा को रहना, वह तो उसकी पर्याय से रहता है। तुम्हारे से रहता होगा वहाँ?

मुमुक्षु : बचाना यही बनियों का काम न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बचाया। किसे बचावे? अपने को बचाना आता नहीं और किसको बचाने जाए। उसका आयुष्य हो तो बचता है, न हो तो उसके कारण मर जाता है। तुम्हारे कारण बचता है वहाँ? दया का शुभभाव आता है। शुभभाव आया, इसलिए वह बच जाए और उसकी दया पल जाए, इस बात में कुछ दम नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ कि उसे ऐसा शुभभाव होता है और उसे वह धर्म नहीं मानता, ऐसा कहते हैं। सेठी! जयपुर में तो रहते थे। आहाहा!

निश्चय दया तो राग की उत्पत्ति न हो और आत्मा के स्वभाव का आश्रय करके वीतरागी पर्याय का अंश जो प्रगट होता है, उसे भगवान दया और अहिंसा कहते हैं। ऐसी दया का व्याख्या की है, हों! आत्मावलोकन में अन्त में की है न! सब बोल रखे हैं। आत्मावलोकन। नहीं? गृहस्थ... कैसे? दीपचन्दजी। दीपचन्दजी ने यह बनाया है, हों! दया की व्याख्या। लाओ न, कहाँ है? इसमें नहीं। आत्मावलोकन। यह तो दया की व्याख्या गृहस्थ ने की है। दीपचन्दजी साधर्मी दिगम्बर श्रावक ने भी दया की व्याख्या कैसी की है! देखो! पढ़ते नहीं, लोगों को विचारना नहीं। ऐई! पर की दया, वह भी एक भगवान का धर्म है, करुणा भी जीव का एक स्वभाव है। वह तो अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ, वह करुणा। उसका नाम दया कहा जाता है। दया का लक्षण। यही पृष्ठ आया, हों! खोलने पर आया, सामने यही है, लो, छठवाँ बोल है। दया का लक्षण।

विकारमय परिणामों द्वारा अपने निजस्वभाव का घात नहीं करना, अपने स्वभाव का पालन करना ही दया है।

मुमुक्षु : यह तो श्रावक का...

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रावक का नहीं। भगवान प्रमाण कहा है सब। पण्डितजी! ऐसा कहते हैं, श्रावक का नहीं, उसमें नहीं कहा? पुरुषार्थसिद्धियुपाय में। जितने अंश में राग की उत्पत्ति (होना), उतनी हिंसा है और आत्मा के स्वभाव की जितनी शुद्धता की उत्पत्ति, उसका नाम अहिंसा और दया है। दया की व्याख्या। देखो! '**यत् निजस्वस्वभावं विकारभावेन न घातयति**' राग से जीव की शान्ति का घात होता है। '**न घातयति न हिनस्ति, निजस्वभावं पालयति तदेव (सैव) दया ॥६ ॥**' (छद्मस्थ जीवों की परम प्राप्ति की सकल रीति।) दीपचन्दजी का आत्मावलोकन है। समझ में आया? प्रकाशदासजी! आत्मावलोकन है। पर की दया तो राग है, विकल्प है। हो, आता है परन्तु वह तो (राग है)। क्या हो? राग है, वही वास्तव में हिंसा है।

मुमुक्षु : धवल में लिखा है कि करुणा स्वभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करुणा, वह तो आत्मा के अकषायभाव को कहा है। आत्मा का अकषायभाव, उसे करुणा कहा है। केवली को करुणा कहा है। केवली को पर की दया का भाव होगा?

मुमुक्षु : केवली को करुणा के सागर हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : करुणा के सागर अर्थात् अविकारी परिणाम के सागर। सेठी! मार्ग तो ऐसा है, बापू! वीतराग परमात्मा का ऐसा तत्त्व है। पूरी दुनिया से यह दूसरा प्रकार है। परमेश्वर केवलज्ञानी तीर्थंकरदेव... समझ में आया? उनकी सब व्याख्या अलग है, हों!

यति और श्रावक का लक्षण, देखो! ***समस्त इन्द्रियों के भोगों से और शरीरादि परिग्रह से सर्व में ममत्वरहित होना, वह यति का लक्षण है। उनमें एकदेश ममत्व का त्याग होना, वह श्रावक का लक्षण है। (छद्मस्थ जीवों की परमात्म प्राप्ति की सकल रीति, श्लोक-7)। सब व्याख्या, एक-एक की।***

शुद्ध का लक्षण, लो, ठीक! ***रागादि विकार रहित ही शुद्ध का लक्षण है।*** प्रत्येक की व्याख्या की है। (श्लोक 10)

वैराग्य का लक्षण— ***राग-द्वेष खेदरहित, ज्ञानसहित उदासीन भाव होना, वह वैराग्य कहलाता है।*** (श्लोक 8)। ऐसे स्त्री-पुत्र छोड़े राग, वह तो सब वे... रागी हैं। भान नहीं होता आत्मा का और स्त्री,पुत्र छोड़े और हो गये वैरागी। समझ में आया? यहाँ तो राग-द्वेष और खेदरहित उदासीनभाव। वापस ज्ञानसहित। वह भी आत्मा के सम्यग्ज्ञानसहित। उसे वैराग्य कहा जाता है। सब एक-एक की व्याख्या की है।

दान का लक्षण। और दान आया, ऐई! ***निजस्वभावभाव शक्तिरूप ही जीवद्रव्य है।*** क्या कहते हैं? दान... दान। निजस्वभाव—आत्मा का आनन्दस्वभाव, वीतरागस्वभाव, शुद्धस्वभाव, वह भावशक्तिरूप जीवद्रव्य है। भावशक्तिरूप जीवद्रव्य-शक्तिवान। ***निजस्वभावभाव शक्तिरूप ही जीवद्रव्य है। अव्यक्त जो निजस्वभावभाव, वह अभिव्यक्त हो जाने पर उस समय अपनेरूप परिणमन करता है, वह दान है।*** भगवान आत्मा अपना भाव जो वीतरागस्वभाव है, उसका जब अभ्यन्तर परिणमन वीतरागी परिणति की दशा हो, उसे यहाँ दान कहा जाता है। पण्डितजी! समझ में आया? बाहर के पैसे के दान दिये और आहार-पानी दिया और धूल दिया... कौन दे? वह तो जड़ है। अरे.. अरे! भारी कठिन। बड़ा गृहस्थ हो, करोड़ (पति) और पाँच लाख खर्च करे तो धर्मधुरन्धर की पदवी दे। धूल में भी धर्म नहीं, सुन न अब! समझ में आया? वीतरागमार्ग तो वीतरागभाव से उत्पन्न होता है। जिसमें जरा भी राग का कण रहे, वह सब वीतरागधर्म नहीं है। आहाहा! वस्तु का स्वभाव ऐसा है। देखो न! इसमें नहीं कहा? देखो!

'**जीवद्रव्य निजस्वभावभावशक्तिरूपं**' - ऐसा। जीवभाव। द्रव्य... द्रव्य। वस्तु भगवान आत्मा का द्रव्य यह। कैसा है द्रव्य? निजस्वभावभावशक्तिरूप है। वीतराग स्वभावभाव, अरागी स्वभावभाव, निर्दोष स्वभावभाव। यह उसकी शक्ति है। '**अव्यक्तवत्**' वह अन्दर अव्यक्त है। उसे व्यक्त परिणति में प्रगट करना। समझ में आया? '**यदा स्वपरनामेभ्यः (स्वपरणिामेभ्यः) ददाति तद्धानम् ॥९॥**' देखो! अपने शुद्धभाव को (दे)। पूरा शुद्धभाव तो आत्मा में पड़ा है। शुद्धस्वरूपी ही आत्मा है। उसे शुद्ध की परिणतिरूपी पर्याय प्रगट करना, वह आत्मा को दान दिया। उसका नाम वास्तविक दान कहा जाता है। पैसे-वैसे का दान नहीं और उसमें राग मन्द पड़ता है, वह वास्तविक दान नहीं। वह दान नहीं, वह तो अदान है। आहाहा! ऐई! एक तो खर्च न करते हों और ऐसा

सुने, (इसलिए) ठीक है अपने। परन्तु क्या कहते हैं ? वहाँ जानेवाले हैं न ? कुछ कहेंगे सही या नहीं ? कहो, समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु : दान दे तो शुभभाव, न दे तो अशुभभाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : दे तो नहीं। उसमें जाने पर, पैसे जाने के काल में राग की मन्दता का भाव होवे तो पुण्य और राग और आत्मा की हिंसा है। कहो, समझ में आया ? क्योंकि रागभाव, वही हिंसा है। यह गजब बात है। शोर मचावे वे सोनगढ़ के नाम से। सोनगढ़ की बात। सोनगढ़ (अर्थात्) लेप न हो, उसे सोनगढ़ कहा जाता है। सोने को जंग लगती है ? इसी प्रकार भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द का धाम प्रभु, उसे राग का कीचड़ कैसा ? आहाहा! माना है कि मैं रागवाला हूँ, विकारवाला हूँ, यह मान्यता इसकी झूठी है। यह राग और विकल्परहित मेरी चीज़ निर्विकार है। शुद्ध आनन्द का धाम परमानन्दस्वरूप, ऐसी शक्ति है। उस शक्तिवाला है, उसका पर्याय में परिणमन (होना), वह शक्ति है, वैसा होना, उसका नाम दान और दया कहने में आता है। समझ में आया ? सब व्याख्या बहुत की है। तप की व्याख्या, भावना की व्याख्या। व्रत का लक्षण कहा, देखो! ***अपने परिणामों को रोकना, वह व्रत कहलाता है।*** (श्लोक ५) ***इन्द्रिय, मन और भोगादि की ओर जाते हुए अपने परिणामों को रोकना...*** विकल्प से रोकना और निर्विकल्परूप रहना, वह व्रत है।

यहाँ तो कहते हैं **जाति, कुल आदि वंदने योग्य नहीं हैं।** जाति, कुल तो जड़ है, यह तो हड्डियाँ हैं। आहाहा! समझ में आया ? अन्दर भगवान आत्मा वस्तु है, वस्तु है तो उसमें आनन्द और ज्ञान, शान्ति बसी हुई शक्तियाँ हैं। उस शक्ति की सम्हाल करने पर जो सम्यग्दर्शन और शान्ति होती है, उसे भगवान ने गुण कहा है और वह आदरणीय कहने में आता है। इसके बिना आदरणीय नहीं हो सकता। आहाहा! **इसलिए इनके धारक हैं, वही वंदने योग्य हैं,...** लो। **जाति, कुल आदि वंदने योग्य नहीं हैं।** यह २७वीं (गाथा पूरी) हुई। (अब २८)

गाथा-२८

अब कहते हैं कि जो तप आदि से संयुक्त हैं, उनको नमस्कार करता हूँ –

वंदमि [1]तवसावण्णा सीलं च गुणं च बंभचेरं च।
सिद्धिगमणं च तेसिं सम्मत्तेण[2] सुद्धभावेण।।२८।।

वन्दे तपः श्रमणान् शीलं च गुणं च ब्रह्मचर्यं च।
सिद्धिगमनं च तेषां सम्यक्त्वेन शुद्धभावेन।।२८।।

सम्यक्त्व–युत शुध भाव से उनके तपों को शील को।
मैं वंदता गुण ब्रह्मचर्य रु शिव–गमन के भाव को।।२८।।

अर्थ – आचार्य कहते हैं कि जो तप सहित श्रमणपना धारण करते हैं, उनको तथा उनके शील को, उनके गुण को व ब्रह्मचर्य को मैं सम्यक्त्व सहित शुद्धभाव से नमस्कार करता हूँ, क्योंकि उनके उन गुणों से–सम्यक्त्व सहित शुद्धभाव से सिद्धि अर्थात् मोक्ष के प्रति गमन होता है।

भावार्थ – पहले कहा कि देहादिक वंदने योग्य नहीं हैं, गुण वंदने योग्य हैं। अब यहाँ गुण सहित की वंदना की है। वहाँ जो तप धारण करके गृहस्थपना छोड़कर मुनि हो गये हैं, उनको तथा उनके शीलगुणब्रह्मचर्य सम्यक्त्व सहित शुद्धभाव से संयुक्त हो उनकी वंदना की है। यहाँ शील शब्द से उत्तरगुण और गुण शब्द से मूलगुण तथा ब्रह्मचर्य शब्द से आत्मस्वरूप में मग्नता समझना चाहिए।।२८।।

गाथा-२८ पर प्रवचन

अब कहते हैं कि जो तप आदि से संयुक्त हैं, उनको नमस्कार करता हूँ – कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, अहो! जिन्हें आत्मज्ञान, आत्मदर्शन और इच्छानिरोधरूपी संयम

---

१. 'तव समण्णा' छाया ह्न (तपः समापन्नात्) 'तवसउण्णा' तवसमाणं' ये तीन पाठ मुद्रित षट्प्राभृत की पुस्तक तथा उसकी टिप्पणी में है। २. 'सम्मत्तेणेव' ऐसा पाठ होने से पाद भङ्ग नहीं होता।

तथा तप (प्रगट हुए हैं), ऐसे सन्तों को मैं वन्दन करता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

वंदमि तवसावण्णा सीलं च गुणं च बंभचेरं च।
सिद्धिगमणं च तेसिं सम्मत्तेण सुद्धभावेण।।२८।।

अर्थ – **आचार्य कहते हैं कि जो तप सहित श्रमणपना धारण करते हैं,...** तप अर्थात् मुनिपना। मुनिपना अर्थात् चारित्र की वीतरागी दशा। समझ में आया? तप कल्याणक आता है या नहीं? तपकल्याणक अर्थात् क्या? भगवान महावीर आदि जो चारित्ररूप से अन्दर में आये, वह तप कहा जाता है। उसे तप कहते हैं। तीन कषाय का अभाव होकर वीतरागी अन्तरदशा प्रगट हो, ऐसे मुनिपने को तप कहा जाता है। अकेला क्रियाकाण्ड और महाव्रत को पालन करे, उसे तप नहीं कहते और उसे मुनि भी नहीं कहते। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आवे। समझ में आया? यह तो वस्तु के स्वरूपरूप का ऐसा वर्णन है, हों! किसी व्यक्ति के लिये यहाँ (बात) नहीं है। अभी दिगम्बरों में एक बड़ा लेख लिखा है न? जब तक यह २५००वाँ वर्ष पूरा न हो, तब तक कोई सम्प्रदाय के जीवों को किसी का विरोध हो, ऐसा बोलना नहीं। यह तो वस्तुस्वरूप है। किसी व्यक्ति के प्रति विरोध या द्वेष की बात नहीं है। सब आत्मा हैं। आत्मा हैं सब। उसका स्वरूप क्या है, इस बात की बात है। कोई... तुम्हारा नियम प्रशंसनीय है। भगवान के २५००वें वर्ष का महोत्सव तीनों एकत्रित होकर, चारों एकत्रित होकर (मनायें)। दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी और तेरापन्थी। इकट्ठे होकर सब करना। इसके पहले किसी को किसी का विरोध हो, ऐसा बोलना नहीं। सेठी! उसमें तो सब लिखते हैं।

मुमुक्षु : इसका अमल तो घर से होना चाहिए या परघर से होना चाहिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परघर से। उसे सुने कौन। लिखे। कोई व्यक्ति पढ़ेगा। कौन ऐसा सब वर्ग पड़ा है। कुछ नहीं। ऐसा सोचा था या नहीं? महाराष्ट्र में बहुत वांचन (होगा)। कुछ नहीं होता। बारह-बारह हजार, तेरह-तेरह हजार लोग आते थे। किसी को

कुछ नहीं। महाराज कहे वह सच्चा। किसी को कोई शंका भी नहीं और विरोध भी नहीं तथा कितने ही कुछ समझते भी नहीं। बड़ा भाग (ऐसा होता है)। बाह्य का है न? धन्यकुमार। धन्यकुमार बालब्रह्मचारी बड़ा गृहस्थ व्यक्ति, पैसेवाला। वहाँ भी बहुत खर्च किये। भाषण-वाषण करे और ऐसी छाप डाले। बारह-तेरह हजार लोग। वह खड़ा हो तो लोगों को (ऐसा होता है)। गृहस्थ व्यक्ति है, माता-पिता बैठे हैं। दस भाई! दस भाई। नौ का विवाह हुआ है, स्वयं बालब्रह्मचारी है और कितनी कही? जमीन है। हजार एकड़ या ऐसी कुछ कहते थे। एक हजार एकड़ जमीन है। दस भाई, नौ की बहुरू पिचहत्तर लोग हैं। सब आये थे अन्तरिक्ष में परन्तु उसकी छाप जोरदार, हों! जैसे यह बाबूभाई की गुजरात में है न? वैसे उसकी। यह तो वापस दिखाव जरा। खड़ा होकर बोले मानो बड़ा अधिकारी बोलता हो, ऐसा बोले। भाषण करे। लोग सुनते हैं। महाराज यहाँ आये हैं, मुश्किल से मैंने कहा और आये हैं, इसलिए लाभ लेना, अमुक करना। यह बात अपने को मिली है, अपना भाग्य है। लोग शान्ति से सुनते थे।

बापू! मार्ग तो यह है। पहले इसे समझना तो पड़ेगा या नहीं? सच्ची श्रद्धा और सच्चे ज्ञान बिना सब व्यर्थ-व्यर्थ है। आहाहा! जहाँ वस्तु की खबर नहीं कि यह वह आत्मा कौन? समझ में आया? और यह सम्यग्दर्शन किसे कहना? सम्यग्ज्ञान किसे कहना? चारित्र किसे कहना? क्या बाहर का जानपना, वह ज्ञान है? व्रतादि की क्रिया, वह चारित्र है? और भगवान सच्चे और देव-गुरु सच्चे माने, वह समकित है? नहीं; वह तो समकित नहीं। आहाहा!

यह तो स्वयं भगवान पूर्णानन्द का नाथ आत्मा केवली ने कहा है। परमेश्वर ने, सर्वज्ञदेव ने तीर्थंकरदेव ने कहा, ऐसा देह से भिन्न भगवान पूर्ण जिसका शुद्धस्वरूप है, ऐसी अन्तर्मुख होकर अन्तर की प्रतीति होना, अन्तर की अर्थात् वस्तु की प्रतीति होना; जैसी वस्तु है, वैसी अन्तर प्रतीति होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन का पहला धर्म का पाया कहा जाता है और वह जहाँ नहीं, वहाँ सब व्यर्थ है। एक बिना के शून्य हैं। वह श्रावक भी नहीं और साधु भी नहीं, ऐसा कहते हैं। क्या हो? कहो, समझ में आया?

तप सहित श्रमणपना धारण करते हैं,... यह तो तप की व्याख्या चलती है। तप अर्थात् यह। अपवास करना और अमुक (करना), वह तप नहीं है। मुनिपना, वह

तपोधन। आत्मा, उसे-साधु को तपोधन कहा जाता है। जिसे तपरूपी धन है। वह तप अर्थात् भगवान आत्मा अनन्त आनन्द की लक्ष्मी का भण्डार है, उसे विश्वास में, अनुभव में लेकर प्रतीति की है और उसमें अन्दर में अन्दर में घुसकर स्थिर होता है। ऐसी चारित्रलक्ष्मी जिसने प्रगट की है, उसे तपोधन कहा जाता है और वह तपोधन जिस जमीन में रहे, उसकी... जमीन भी उसे कहा जाता है न? तपोधन भूमि, तपोभूमि। आहाहा! आता है न उसमें? 'वे साधु जहाँ चरण धरे।'

मुमुक्षु : ते गुरु मेरे मन बसो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ते गुरु मेरे मन बसो। उसमें आता है। जहाँ आगे आत्मा आनन्द की लहर में शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. पूर्ण शान्ति जिसका स्वरूप है, उसमें एकाग्र होकर जिसने शान्ति प्रगट की है और शान्ति में मस्त है, झूलते हैं, वेदन करते हैं, रमते हैं, आहाहा! उन्हें तप और उन्हें मुनिपना कहा जाता है। आहाहा! यह तो भगवान आत्मा छोड़कर सब बातें। या तो भक्ति और या तो दया, या तो व्रत, और या तो अपवास। वह तो पड़ा रहा - भगवान तो पड़ा रहा, वररहित बारात। वररहित समझ में आया? भान भी नहीं होता। कहा न?

किसान का एक आठ वर्ष का लड़का था। उसका विवाह था, उसे अँगूठी पहनायी। विवाह की अँगूठी होती है न? दूसरा छोटा लड़का था। उसका विवाह था। आठ वर्ष का। किसान में छोटे का विवाह करते हैं न? तेरे विवाह में मुझे ले जायेगा या नहीं? उसका वह दोस्त कहे। भाई! मुझे खबर नहीं ले जायेंगे या नहीं? क्योंकि बहुत बार किसी के विवाह में जाते हों, उसके माँ-बाप न ले जाते हों। परन्तु यह तो तेरा विवाह है न, खबर नहीं। यह मेरा विवाह है या किसी का, इसकी खबर नहीं। विवाह में मुझे ले जायेंगे या नहीं? उसका दूसरा भाईबन्ध कहे। भाई! मुझे खबर नहीं, ले जायेंगे या नहीं? परन्तु विवाह तेरा है न? वह लड़का तो बेचारा साधारण।

इसी प्रकार अन्दर में तेरा विवाह माँडा है और तू जागृत होकर न आवे, यह कैसे बने? ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसे अन्दर आत्मा की लगन लगी। राग और विकल्प से पार प्रभु है, उसकी लगन का जिसने अन्दर लगन किया और स्थिर होकर केवलज्ञान लेकर विवाह कर परमात्मा होकर ही रहेगा। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। बाहर से क्रियाकाण्ड करके मर जाए तो भी कहीं धर्म नहीं होता। नहीं होता? ऐ..!

मुमुक्षु : ....शुभाशुभभाव से धर्म नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा! जबरदस्त है। शुभाशुभभाव से नहीं होता।

मुमुक्षु : शुभाशुभभाव से हो तो अभी तक क्यों नहीं हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभाशुभभाव से होता है तो नौवें ग्रैवेयक गया, क्यों नहीं हुआ? जबरदस्त है न! नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, तो भी कुछ नहीं हुआ तो अब तेरे शुभभाव से होगा? समझ में आया? लड़के भी बोलने तो सीखे हैं न! आहाहा! पहले भी कहता था।

जो तप सहित श्रमणपना धारण करते हैं, उनको तथा उनके शील को,... उनका स्वभाव शुद्ध वीतरागता। **उनके गुण को व ब्रह्मचर्य को...** नीचे प्रत्येक का अर्थ करेंगे। **मैं सम्यक्त्वसहित शुद्धभाव से नमस्कार करता हूँ,...** ऐसे समकितसहित गुणी को मैं भी समकितसहित उन्हें वन्दन करता हूँ। समझ में आया? **क्योंकि उनके उन गुणों से-सम्यक्त्वसहित शुद्धभाव से सिद्धि अर्थात् मोक्ष के प्रति गमन होता है।** देखो! वे गुण जो शुद्ध हैं, आत्मा के सम्यग्दर्शन की निर्मलता की पवित्रतासहित जो शुद्धभाव है, उससे सिद्धि अर्थात् मोक्ष, उसके प्रति गमन होता है। शुद्धस्वभाव से मुक्ति में गमन होता है। शुभभाव से गमन नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

एक व्यक्ति ने अब ऐसा निकाला है। यहाँ का सब ऐसा आया न? यह तो उनके शास्त्र में पंच महाव्रत को आस्रव कहा होगा। अपने शास्त्र में तो पंच महाव्रत को संवर कहा है। ऐसा और निकाला। अरे! गजब! एक आर्यिका बोलती थी। क्योंकि ऐसा लगे कि इनका तो चला। यह तो महाव्रत को आस्रव कहते हैं। यद्यपि उसे-अज्ञानी को तो महाव्रत भी कहाँ थे? समझ में आया? तब कहे कि दिगम्बर के शास्त्रों में महाव्रत को आस्रव कहा होगा, अपने शास्त्र में (ऐसा नहीं है)। बात सच्ची, हों! उसमें है। महाव्रत को संवर-निर्जरा कहा है। ठाणांग में पाँचवें ठाणे। पाँचवें में निर्जरा ठाणे। कुछ बिना ठिकाने के बनाये हुए शास्त्र हैं। महाव्रत तो विकल्प है। वृत्ति उठती है कि ऐसा करूँ, ऐसा करूँ, वह तो वृत्ति है। आहाहा! वह संवर कैसा और वह निर्जरा कैसी? पाठ है ठाणांग में, इसलिए बेचारे भगवान के नाम से उलझे। भगवान कहते हैं न! परन्तु भगवान के कहे हुए नहीं हैं। सुन न! यह तो उनके सम्प्रदाय के बाँधनेवालों ने भगवान के नाम से चढ़ा दिया है। ऐसी बात है, भाई! नाथाभाई! ठाणांग में आता है, हों!

यह प्रश्न व्याख्यान में भी आता है। है संवर का अधिकार। दया और अहिंसा के साठ नाम दिये हैं, सब आस्रव के हैं। पहला संवर अधिकार है। दया के साठ नाम दिये हैं। सब दया के नाम। अहिंसा,... उसमें माने। प्रश्न व्याकरण अधिकार। यह सब वे लोग बहुत लगाते हैं परन्तु वह तो विकल्प है, राग है। वह अहिंसा कहाँ थी? संवर कैसा? समझ में आया?

(संवत्) १९७६ में प्रश्न किया था। ध्रांगध्रा, ध्रांगध्रा में मगनभाई थे न? मगनभाई, नहीं? ध्रांगध्रा में मगनभाई थे और वजुभाई थे। वजुभाई नहीं, गीजुभाई। गीजुभाई नाम था। १९७६ में गये न पहले? ५० वर्ष हुए। उस ओर से आये थे विरमगाम से। प्रश्न चला था कि इस संवर का क्या? इस शुभयोग को संवर कहा है न? यह प्रश्न चला था, भाई! १९७६ में, हों! १९७६। यह सब 'प्रश्न व्याकरण' में आता है। शुभयोग संवर नहीं होता। लिखा है न? वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। कहा था न?

एक बार स्वप्न आया था (संवत्) १९७६ में नग्न। नग्न अर्थात् लंगोटी पहने हुए। नग्न मुनि। मुझे देखा हुआ नहीं कभी। मगनभाई, मगन मूलचन्द। उस ओर से आते थे। 'गारा' गारा.. 'गारा' गाँव है न? गारा ध्रांगध्रा से तीन कोस विरमगाम। वहाँ सब सामने आये थे। जिन्दगी में पहले-पहले गये थे। ....सामने नदी किनारे। बड़ी नदी है और सामने आये। मगनभाई पहले बोले। मैं तो पहचानूँ नहीं कभी, हों! महाराज! देखो! यह एक देहरी है। यहाँ रह जाना है? मैंने कहा, यह क्या? नदी के किनारे इस ओर। नदी में इस ओर देहरी है ऊपर। ऊपर एक देहरी है। चारों ओर स्तम्भ और ऐसी खुली हुई साधारण। यह क्या है? फिर वहाँ गये तब कहे, मुझे स्वप्न आया था। मैंने तो तुम्हें मुनि देखा है, नग्न मुनि। नग्न मुनि अर्थात् क्या? एक लंगोटी पहनी हुई परन्तु यही वेश और यही वेश तुम्हारा। मुनिपने में कभी देखा नहीं, हों! जिन्दगी में। मैंने उन्हें देखा नहीं। यही शरीर और एक लंगोटी थी। तुम दिगम्बर मुनि थे, इसलिए मैंने तुमसे कहा कि यहाँ आ जाओ। ऐसा करके स्पष्टीकरण किया। मगनभाई को पहिचानते थे? मगन मूलचन्द। यह भूराभाई के पिता, भूराभाई के पिता। तब यह प्रश्न व्याकरण की चर्चा बहुत चली थी। प्रश्न व्याकरण ऐसा है, शुभयोग वह... क्या करना? शुभयोग संवर नहीं होता, कहा। समझ में आया? संवर तो आत्मा का भाव रागरहित हो, वह संवर है परन्तु उनके-

श्वेताम्बर के शास्त्रों की लेखन की शैली ही ऐसी है, इसलिए बेचारे लोग बाहर से निकल नहीं सकते। जाधवजीभाई! देखो!

उनके उन गुणों से–सम्यक्त्वसहित शुद्धभाव से सिद्धि... होती है। देखा? **सिद्धि अर्थात् मोक्ष के प्रति गमन होता है।** २७–२७। अंक में भूल है। २८ लिखा है। यहाँ तो भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा शाश्वत् आनन्द का धाम प्रभु आत्मा भगवान तीर्थंकर ने कहा हुआ, देखा हुआ, जाना हुआ। ऐसे आत्मा के अन्तर में ऐसा पूरा परमानन्द है, ऐसी शुद्ध की प्रतीति अन्दर में भान में आना, ऐसे समकितसहित शुद्धभाव की वृद्धि से मोक्ष में जाया जाता है। किसी राग से और पुण्य से और आस्रव से मोक्ष में नहीं जाया जाता। आहाहा! ऐसी बात है। शास्त्र का न माने तो? हम तो उसे संवर मानते हैं। वह तो राग है और तू माने तो क्या भला हुआ? आहाहा! निवृत्ति है न, निवृत्ति है न? कहाँ निवृर्तता था? वह तो अशुभ नहीं, शुभ में आया। दृष्टि तो वहाँ है निवृत्त कहाँ था? प्रवृत्ति में पड़ा है। समझ में आया? विकल्प उठे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, यह विकल्प शुभराग है, उन पर दृष्टि है तो प्रवृत्ति में पड़ा है। पण्डितजी! बराबर है? बाहर प्रवृत्ति नहीं। अन्दर शुभभाव में दृष्टि होवे तो प्रवृत्ति में–मिथ्यात्व की प्रवृत्ति में पड़ा है। आहाहा! उस राग से भिन्न भगवान पूरा आनन्दकन्द (विराजमान है)। कल्प.. ऐसा कुछ है न तुम्हारे? कबीर में एक भजन, नहीं? कल्प, कल्पवेली ऐसा कुछ है।

एक बार हम 'बोरड' गये थे। एक व्यक्ति बोलता था। बहुत वर्ष की बात है। कल्प चिन्तामणि या ऐसा कुछ भजन है। कबीर का कोई भजन है, बहुत वर्ष हुए। अहमदाबाद से वह भूराभाई का लड़का नहीं आता था? रतिभाई। भूराभाई थे और कोई गृहस्थ था। गाँव का सोनी हो या कोई हो। कबीर का गायन बोले थे। अध्यात्मकल्प बेलड़ी या ऐसा कुछ था। बोला था। मकान में उतरे थे। परन्तु यह अध्यात्म अलग बात है। वह तो सब स्वयं की कल्पना से (की हुई बातें हैं)।

यह तो भगवान आत्मा स्वयं अध्यात्म अर्थात् अन्तरस्वरूप। जिसका द्रव्य अर्थात् वस्तु और शक्ति अर्थात् गुण, ऐसे अनन्त गुणों का धारक अनन्त संख्यावाला एक तत्त्व, उसकी श्रद्धा और ज्ञान का परिणमन होना। अनन्त–अनन्त गुण का परिणमन होना। समझ में आया? उसे यहाँ सम्यग्दर्शन (कहते हैं) और उस सम्यग्दर्शन से शुद्धता बढ़ते–बढ़ते

शुद्ध होने से शुद्धता से मुक्ति होती है। समझ में आया? वे भाई थे न? वाडीलाल मोतीलाल। नहीं? वे (संवत्) १९६६ में, १९६५-६६ की बात है। मैं जैन समाचार मँगाता था। वहाँ दुकान पर। यह कबीर के सब दोहे थे। कबीर के दोहों का बख्शीश दिया था। बारह महीने तक होवे न? देते हैं, भेंटरूप से (देते हैं) कबीर दोहावली थी। पुस्तक वहाँ दुकान पर थी। दोहरा-बोहरा सब पढ़ा हुआ, हों! उस दिन। यह तो १९६५-६६ की बात है। संवत् १९६५-६६। जैन समाचार में भेंट आया था। उस समय अच्छा लगता था। वैराग्यवाला। कबीर दोहावली नामक पुस्तक भेंट आया था। वाडीलाल मोतीलाल की ओर से। अहमदाबाद। यह दोहावली अलग प्रकार की है। समझ में आया?

ऐसे आत्माएँ अनन्त हैं, उससे अनन्तगुने तो परमाणु हैं। उन परमाणु की संख्या से अनन्तगुने तो आकाश के प्रदेश हैं। आहाहा! ऐसा जिसे अन्तर में ज्ञान वर्ते, एक समय की पर्याय में इतनी तो उसे स्वीकृति हो। इतनी स्वीकृति जिसे नहीं, उसे तो एक समय की पर्याय की भी प्रतीति नहीं। उसे समकित नहीं होता और अज्ञानदशा होती है। आहाहा!

इतनी एक समय की पर्याय की प्रतीति। इतना आत्मा, आकाश अनन्तगुणा परमाणु और अनन्त आत्मा, इसकी प्रतीति हो, एक समय की पर्याय का ज्ञान तो भी वह पर्यायदृष्टि है, वहाँ तक वह मिथ्यादृष्टि है। इतनी पर्याय की जिसे खबर नहीं और श्रद्धा नहीं, वह तो तीव्र मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? यह तो समकित का ध्येय पूरा आत्मा इतना है, ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया? ऐसा पूर्णानन्द प्रभु, उसका अन्तर में विश्वास आकर, माहात्म्य आकर अन्दर में प्रतीति भान होकर हो, वह समकितसहित की शुद्धता बढ़ती जाए, उसे मुक्ति होती है, उसे केवलज्ञान की दशा प्राप्त होती है। अज्ञानी को रागवाले को, क्रियाकाण्डवाले को तो निगोद की दशा धीरे-धीरे प्राप्त करता है। कदाचित् कोई शुभभाव होवे और स्वर्ग में भूतड़ा-बूतड़ा हो, व्यन्तर-व्यन्तर हो। आहाहा! समझ में आया?

***भावार्थ* – पहले कहा कि देहादिक वंदने योग्य नहीं हैं, गुण वंदने योग्य हैं। अब यहाँ गुणसहित की वंदना की है। वहाँ जो तप धारण करके गृहस्थपना छोड़कर...** देखो, जिसने मुनिपना धारण करके गृहस्थपना छोड़ा है। **मुनि हो गये हैं, उनको तथा उनके शीलगुण...** देखो! मुनि हुए, उनके तप की व्याख्या की है। उनका शीलगुण यह ब्रह्मचर्य। **सम्यक्त्वसहित शुद्धभाव से संयुक्त हो, उनकी वंदना की है।**

यहाँ शील शब्द से उत्तरगुण... लेना। उत्तरगुण है न सब? समिति, गुप्ति के भेद सब। **और गुण शब्द से मूलगुण...** लेना। २८ मूलगुण। अर्थात् मूलगुण और उत्तरगुण। बहुत भेद है न? उत्तरगुण के तो बहुत भेद हैं। शील आता है? अठारह हजार शीलामृत धारा। अठारह हजार शीलामृत धारा। समझे न? यह आयेगा आगे कहीं अर्थ में। ऐसा शील और गुण शब्द से २८ मूलगुण।

ब्रह्मचर्य शब्द से आत्मस्वरूप में मग्नता समझना चाहिए। पहले दो बाहर की बातें की, भेद की। यह तो अभेद आया। ब्रह्मचर्य—ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा, उसका नाम ब्रह्म अर्थात् अन्तर में आनन्द में रमणता करना, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। आहाहा! समझ में आया? **ब्रह्मचर्य शब्द से आत्मस्वरूप में मग्नता समझना चाहिए।** लो, चर्या अर्थात् लीनता। किसमें? कि ब्रह्म। भगवान ब्रह्मानन्द प्रभु में विकल्परहित लीनता (होना), इसका नाम स्वरूप में लीनता और ब्रह्मचर्य कहा है। ऐसे जीव को कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं नमन करता हूँ। उस गुण को वन्दन हो, परन्तु शरीर आदि को नहीं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-२९

आगे कोई आशंका करता है कि संयमी को वंदने योग्य कहा तो समवसरणादि विभूति सहित तीर्थंकर हैं, वे वंदने योग्य हैं या नहीं ? उसका समाधान करने के लिए गाथा कहते हैं कि जो तीर्थंकर परमदेव हैं, वे सम्यक्त्वसहित तप के माहात्म्य से तीर्थंकर पदवी पाते हैं, वे भी वंदने योग्य हैं –

चउसट्ठि चमरसहिओ चउतीसहि अइसएहिं संजुत्तो।
अणवरबहुसत्तहिओ कम्मक्खयकारणणिमित्तो ।।२९।।

चतु:षष्टिचमरसहित: चतुस्त्रिंशद्भिरतिशयै: संयुक्त:।
[१]अनवरतबहुसत्त्वहित: कर्मक्षयकारणनिमित्त:[२] ।।२९।।

---

१. 'अणुचरबहुसत्तहिओ' (अनुचरबहुसत्त्वसहित:) मुद्रित षट्प्राभृत में यह पाठ है।
२. 'निमित्ते' मुद्रित षट्प्राभृत में ऐसा पाठ है।

चौंषठ चँवर चौंतीस अतिशय से सहित अरहंत को।
नित बहुत प्राणी हितंकर हेतु कर्म–क्षय नमन हो।।२९।।

अर्थ – जो चौसठ चंवरों से सहित हैं, चौतीस अतिशय सहित हैं, निरन्तर बहुत प्राणियों का हित जिनसे होता है ऐसे उपदेश के दाता हैं और कर्म के क्षय का कारण हैं ऐसे तीर्थंकर परमदेव हैं, वे वंदने योग्य हैं।

भावार्थ – यहाँ चौंसठ चँवर चौंतीस अतिशय सहित विशेषणों से तो तीर्थंकर का प्रभुत्व बताया है और प्राणियों का हित करना तथा कर्मक्षय का कारण विशेषण से दूसरे का उपकार करनेवालापना बताया है, इन दोनों ही कारणों से जगत में वंदने, पूजने योग्य हैं। इसलिए इसप्रकार भ्रम नहीं करना कि तीर्थंकर कैसे पूज्य हैं, यह तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग हैं। उनके समवसरणादिक विभूति रचकर इन्द्रादिक भक्तजन महिमा करते हैं। इनके कुछ प्रयोजन नहीं है, स्वयं दिगम्बरत्व को धारण करते हुए अंतरीक्ष तिष्ठते हैं – ऐसा जानना।।२९।।